इकाई.3 यजुर्वेद – शाखाएं, भेद एवं वर्ण्य – विषय तथा धर्म एवं समाज

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

भारतीयों के लिये वेद की उपोगिता तो बनी हुई है। वेद से भारतीयों का जीवन ओतप्रोत है। हमारी उपासना के भाजन देवगण हमारे संस्कारों की दशा बताने वाली पद्धति, हमारे मस्तिष्क को प्रेरित करने वाली विचारधारा इन सबका उद्भव स्थान वेद ही है। अतः हमारे हृदय में वेद के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा है, तो कोई आश्चर्य का विषय नहीं है, परन्तु वेदों का महत्व इतना संकीर्ण तथा सीमित नहीं है। मानव जाति के प्राचीन इतिहास रहन–सहन आचार–व्यवहार, की जानकारी के लिए वे उतने ही उपादेय तथा आदरणीय हैं इसमें कोई सन्देह नहीं की प्राचीन भारतवर्ष की प्रत्येक विचार, विचार पद्धति वेद के विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति का साधन बनी, जिसके बिना सत्य का अन्तर्ज्ञान होना एकान्त असम्भव समक्षा जाता था।

वेद जो कि स्वयं एक दुरुह तथा अत्यन्त कठिन विषय है तथापि इसके एक खण्ड का अर्थात् केवल एक वेद का ज्ञान भी पूर्ण रूप से करलेना बढ़े–बढ़े विद्वानों के लिए असम्भव सा प्रतीत होता है। यजुर्वेद जो कि वेदत्रयी में प्रमुख स्थान रखता है का अध्ययन इस इकाई के माध्यम संक्षिप्त रूप में किया जा सकता है। इसके माध्यम से आप यजुर्वेद के शाखाओं, उनके कितनें भेद है तथा उसमें वर्णित विषय के साथ–साथ यजुर्वेदिक कालीन धर्म तथा समाज के विषय में अध्ययन कर सकेंगे। तथा तत्सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर भी सरलता पूर्वक दे सकेगें।

3.2 उद्देश्य

- इस इकाई के माध्यम से आप यजुर्वेद से परिचित हो सकेंगे।
- यजुर्वेद की शाखाओं से परिचित हो सकेगें।
- यजुर्वेद के भेद को ज्ञन सकेगे।
- डसमें वर्णित विषय के साथ–साथ तत्कालीन धर्म एवं समाज के विषय में जान सकेगें।

3.3 यजुर्वेद शाखाएँ, भेद एवं वर्ण्य विषय –

'आष्वर्य' कर्म के लिए उपादेय यजुर्वेद में यजुषों का संग्रह है। 'यजुष्' शब्द की व्याख्यायें आपाततः भिन्न भले ही प्रतीत हों, परन्तु उनमें एक ही लक्षण की ओर संकेत है। 'अनियताक्षरवसानों यजुः (अक्षरों की संख्या जिसमें नियत या निश्चित न हो); 'गद्यात्मको यजुः' तथा 'शेषे यजुः शब्दः' का तात्पर्य यही है कि ऋक् तथा साम से भिन्न गत्यात्मक मन्त्रों का ही अभिधान 'यजुः' है।

3.3.2 यजुर्वेद के भेद

वेद के दो सम्प्रदाय है–(1) ब्रह्म सम्प्रदाय तथा (2) आदित्य सम्प्रदाय। शतपथ–ब्राह्मण के अनुसार आदित्य–यजुः शुक्ल–यजुष के नाम से प्रसिद्ध है, तथा याज्ञवल्क्य के द्वारा आख्यात हैं (आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्ये–नाख्यायन्ते–शत०ब्रा० 14/9/5/33)। अतः आदित्य–सम्प्रदाय का प्रतिनिधि शुक्ल यजुर्वेद है, तथा ब्रह्म–सम्प्रदाय का प्रतिनिधि कृष्ण यजुर्वेद है। यजुर्वेद के शुक्ल कृ ष्णत्व का भेद उसके स्वरूप के ऊपर आश्रित है। शुक्ल यजुर्वेद में दर्शपौर्णमासादि अनुष्ठानों के लिए आवश्यक केवल मन्त्रों का ही संकलन है। उधर कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों

के साथ ही साथ तन्नियोजक ब्राह्मणों का संमिश्रण हैं मन्त्र तथा ब्राह्मण भाग का एकत्र मिश्रण ही कृष्णयजुः के कृष्णत्व का कारण है, तथा मन्त्रों का विशुद्ध एवं अमिश्रित रूप से शुक्लयजुः के शुक्लत्व का मुख्य हेतु है। कृष्णयजुः की प्रधान शाखा 'तैत्तिरीय' नाम से प्रख्यात है, जिसके विषय में एक प्राचीन आख्यान अनेकत्र निर्दिष्ट किया गया है। गुरु वैशम्पायन के शाप से भीत योगी याज्ञवल्क्य ने स्वाधीत यजुर्षों का वमन कर दिया और गुरु के आदेश से अन्य शिष्यों ने तित्तिर का रूप धारण कर उस वान्त यजुष् का भषण किया। सूर्य को प्रसन्न कर उनके ही अनुग्रह से याज्ञवल्क्य ने शुल्क–यजुष् की उपलब्धि की।

पुराणों तथा वैदिक साहित्य के अध्ययन से 'याज्ञवल्क्य' वाजसनेय' एक अत्यन्त प्रौढ़ तत्त्वज्ञ प्रतीत होते हैं, जिनकी अनुकूल सम्मति का उल्लेख शतपथ–ब्राह्मण तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में किया गया है (अ० 3 और 4)। ये मिथिला के निवासी थे, तथा उस देश के अधीश्वर महाराज जनक की सभा में इनका विशेष आदर और सम्मान था। इनके पिता का नमा देवराज था, जो दीनों को अन्न दान देने के कारण 'वाजसनि' के अपरनाम से विख्यात थे। इन्होंने व्यासदेव के चारों शिष्यों से वेद चतुष्टय का अध्ययन किया; अपने मातुल वैशम्पायन ऋषि से इन्होंने यजुर्वेद का अध्ययन सम्पन्न किया था। शतपथ के प्रामाण्य पर इन्होंने उद्दालक आरुणि नामक तत्कालीन प्रौढ़ दार्शनिक से वेदान्त का परिशीलन किया था। आरूणि ने एक बार इनसे वेदान्त की प्रशंसा में कहा था कि यदि वेदान्त की शक्ति से अभिमन्त्रित जल से स्थाणु (पेड़ का केवल तथा) को सींचा जाय तो उसमें भी पत्तियाँ निकल आती है। पुराणों से प्रतीत होता है कि योग्य शिष्य ने गुरु के पूर्वोक्त कथन को अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दिखलाया। इनकी दो पत्नियाँ थीं–मैत्रीयी तथा कात्यायनी। मैत्रेयी बड़ी ही विदुषी तथा ब्रह्मवादिनी थी और घर छोड़ कर वन में जाते समय याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को ही ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी। प्रगाढ़ पाण्डित्य, अपूर्व योगबल तथा गाढ़ दार्शनिकता के कारण ही योगी याज्ञवल्क्य कर्मयोगी राजा जनक की विशेष अभ्यर्थना तथा सत्कार के भाजन थे। यजुर्वेद में मुख्यरूपेण कर्मकाण्ड का प्रतिपादन है।

3.3.4 यजुर्वेद का वर्ण्य–विषय

शुक्ल यजुर्वेद की मन्त्र–संहिता 'वाजसनेयी संहिता' के नाम से विख्यात है, जिसके 40 अध्यायों में अन्तिम 15 अध्याय खिलरूप से प्रसिद्ध होने के कारण अवान्तरयुगीय माने जाते हैं। इस संहिता के विषय का अनुशीलन यजुर्वेद के सामान्य विषयों से परिचय कराने के लिए पर्याप्त होगा।

आरम्भ के दोनों अध्यायों में दर्श तथा पौर्णमासा इष्टियों से सम्बद्ध मन्त्रों का वर्णन है। तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य (चार महीनों पर होने वाले यज्ञ) के लिए उपयोगी मन्त्रों का विवरण हैं चतुर्थ से लेकर अष्टम अध्याय तक सोमयागों का वर्णन है, जिसमें अग्निष्टोम का प्रकृति–याग होने के कारण नितान्त विस्तृत विवरण हैं अग्निष्टोम में सोम की पत्थरों से कूटकर इसका रस चुआते हैं और दूध मिलाकर उसे प्रातः, मध्याह्न तथा सांयकाल अग्नि में हवन करते है। इसका नाम है–सवन, जो तीनों समयों के अनुसार भिन्न–भिन्न नामों से विख्यात हैं एक दिन में समाप्य 'एकाह' सोमायागों में 'वाजपेय' याग अन्यतम है, तथा राजा के अभिषेक के अवसर पर होने वाला 'राजसूय' यज्ञ है, जिसमें द्यूत–क्रीड़ा, अस्त्र–क्रीडा आदि नाना राजन्योचित क्रिकलापों का विधान होता है। इन दोनों यज्ञों के सम्बद्ध मन्त्र संहिता के नवम् तथा दशम् अध्यायों में निर्दिष्ट किये गये हैं। इसके अनन्तर आठ अध्यायों (11–18अ०) तक 'अग्निचयन' अर्थात् यज्ञीय होमाग्नि के लिए वेदिनिर्माण का वर्णन बड़े ही विस्तार के साथ किया गया है। वेदि की रचना 10800 ईटों

से होती है, जो विशिष्ट स्थान से लाये जाते हैं, तथा विशिष्ट आकार के बनाये जाते है। वेदि की आकृति पंख फैलाये हुए पक्षी के समान होती है। ब्राह्मण मन्त्रों में वेदि और उसके विविध ईटों के आध्यात्मिक रूप का व्याख्यान बड़ी मार्मिकता के साथ किया गया है।

16वें अध्याय में शतरुद्री होम का प्रसंग है, जिसमें रुद्र की कल्पना का बड़ा ही सांगोपांग विवेचन मिलता है। वैदिकों में यह 'रुद्राध्याय' अतीव उपयोगी होने से नितान्त प्रख्यात है। 18वें अध्याय में 'वसोर्धारा' सम्बन्धी मन्त्र निर्दिष्ट है। इसके अनन्तर तीन अध्यायों (19–21अ०) में सौत्रामणि यज्ञ का विधान है। कहा जाता है कि अधिक सोमपान करने से इन्द्र को रोग हो गया था जिसकी अश्विन ने इस यज्ञ के द्वारा चिकित्सा की। राज्य से च्युत राजा, पशुकाम यजमान तथा सोमरस की अनुकूलता से पराङ्मुख व्यक्ति के निमित्त इस याग का अनुष्ठान विहित है। इसकी प्रक्रिया का संक्षिप्त विवरण 19वें अध्याय के महीधर भाष्य के आरम्भ में उपलब्ध है। सौत्रामणी यज्ञ में सोमरस के साथ सुरापान का भी विधान पाया जाता है (सौत्रामाण्यां सुरा पिबेत्)

अ० 22–25 का अश्वमेध के विशिष्ट मन्त्रों का निर्देश है। अश्वमेध सार्वभौम आधिपत्य के अभिलाषी सम्राट् के लिए विहित है। इसका सांगोपांग वर्णन शतपथ ब्राह्मण के 13वें काण्ड में तथा कात्यायन श्रौतसूत्र (20वें अध्याय) में है। इसी प्रसंग में वह प्रसिद्ध प्रार्थना (22/22) उपलब्ध होती है जिसमें यजमान अपने भिन्न–भिन्न पदार्थों के लिए उन्नति तथा वृद्धि की कामना करता है। 26–29 अ० तक खिलमन्त्र का संकलन है, जिससे पूर्व–निर्दिष्ट अनुष्ठानों के विषय में नवीन मन्त्र दिये गये है। 30वें अध्याय में 'पुरुषमेध' का वर्णन है, जिसमें 184 पदार्थों के आलम्भन का निर्देश है। यह आलम्भन वास्तव में आलम्भन न होकर केवल प्रतीकरूप में उल्लिखित है। भारत में कभी भी पुरुषमेध नहीं किया जाता था। यह केवल काल्पनिक यज्ञ है जिसमें पुरुष की नाना प्रतिनिधिभूत वस्तुओं के लिए भिन्न–भिन्न पदार्थों में दान का विधान था, जैसे नृत्त के लिए सूत की, गीत के लिए शैलूष की, धर्म के लिए समाचार आदि के आलम्भन की विधि है। इस अध्याय से तत्कालीन प्रचलित व्यवसाय, पेशा तथा कलाकौशल का भी यत्किंच्चित् परिचय प्राप्त होता हैं 31वें अध्याय में प्रसिद्ध पुरुष–सूक्त है, जिसमे की ऋग्वेद की अपेक्षा अन्त में 6 मन्त्र अधिक उपलब्ध होते हैं। 32 तथा 33 अध्याय में 'सर्वमेध' के मन्त्र उल्लिखित हैं 32 के आरम्भ में हिरण्यगर्भ सूक्त के भी कपितय मन्त्र उद्धृत हैं। 34वें अध्याय के आरम्भ में 6 मन्त्रों का 'शिवसंकल्प उपनिषद्' (तन्मे मनः शिवसंक्ल्पमस्तु) मन तथा उसकी वृत्तियों के स्वरूप बतलाने में नितान्त उपादेय है। मन की महत्ता के प्रतिपादन के अनन्तर मन को 'शिवसंकल्प' होने की प्रार्थना है, जिससे उसका संकल्प (इच्छा) सर्वदा कल्याणकारी बने–(यजुः 34/6)

सुषारथिरश्रवनिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजित इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जत्रिष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(जिस प्रकार शोभन सारथि अश्वों को आगे चलने के लिए प्रेरित करता है और वेगवान् उत्पथगामी घोड़ों का चाबुक से नियमन करता है, उसी प्रकार मन भी मनुष्यों को लोगों में प्रेरित करता है तथा उसका नियमन भी करता है जिससे वे उन्मार्गगामी न बन जाये। यह हमारे हृदय में प्रतिष्ठित होनेवाला, जरा से रहित तथा अत्यन्त शीघ्रगामी मन शिव–संकल्प बने।) ये मन्त्र ऋक्–परिशिष्ट (सूक्त 33) में भी उपलब्ध होते है।35 वें अध्याय में पितृमेघ सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन तथा 36 से 38 अध्याय तक प्रवर्ग्ययाग का

विशद वर्णन है। प्रवर्ग्य में आग के ऊपर कड़ाही रख देते है और वह तप्त होकर बिल्कुल लाल बन जाती है जिससे वह सूर्य का प्रतीत होती है। तदनन्तर दूर को उबाल कर अश्विन् को समर्पण किया जाता है पीछे यज्ञपात्रों को ऐसी स्थिति रखते हैं जिससे मनुष्य की आकृति बन जाती है। अन्तिम अध्याय (40 वा अ०) ईशावस्य उपनिषद् है, जो अपने प्रारम्भिक दो शब्दों के कारण यह नाम धारण करता है। उपनिषदों में यह लघुकाय उपनिषद् आदिम माना जाता है, क्योंकि इसे छोड़ कर कोई भी अन्य उपनिषद् संहिता का भाग नहीं है। उपनिषद् ग्रन्थों में इसके प्राथम्य धारण करने का यही मुख्य हेतु है। इस संहिता का आदित्य के साथ घनिष्ठता का परिचय इसका अन्तिम मन्त्र देता है–(ईशावा०40/17)–

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।।

काण्यसंहिता–

शुक्ल यजुर्वेद की प्रधान शाखायें माध्यन्दिन तथा काण्व है। काण्व शाखा का प्रचार आज कल महाराष्ट्र प्रान् तमें ही है और माध्यन्दिन शाखा का उतर भारत में, परन्तु प्राचीन काल में काण्य शाखा का अपना प्रदेश उत्तर भारत ही था, क्योंकि एक मन्त्र में (11/11) कुरु तथा पच्चालदेशीय राजा का निर्देश संहिता में मिलता है (एष यः कुरवो राजा, एष पच्चालों राजा)। महाभारत के आदिपर्व (63/18) के अनुसार शकुन्तला को पाष्यपुत्री बनाने वाले कण्व मुनि का आश्रम 'मालिनी' नदी के तीर पर था, जो आज भी उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले में 'मालन' के नाम से विख्यात एक एक छोटी सही नहीं है। अतः काण्वें का प्राचीन सम्बन्ध उत्तरे प्रदेश से होने में कोई विप्रतिपित्ति नहीं दृष्टिगत होती।

काण्वसंहिता का एक सुन्दर संस्करण मद्रास के अन्तर्गत किसी 'आनन्दवन' नगर तथा औध से प्रकाशित हुआ है जिसमें अध्यायों की संख्या 40, अनुवाकों की 328 तथा मन्त्रों को 2086 है, अर्थात् माध्यन्दिन–संहिता के मन्त्रां (1975) से यहाँ 11 मन्त्र अधिक है। काण्व शाखा अधिक है। काण्व शाखा का सम्बन्ध पाच्चरात्र आगम के साथ विशेष रूप से पाच्चरात्र संहिताओं में सर्वत्र माना गया है।

कृष्ण यजुर्वेद–

उपरि निर्दिष्ट विषय–विवेचन से कृष्ण–यजुर्वेद की संहिताओं के भी विषय का पर्याप्त परिचय मिल सकता है, क्योंकि दोनों में वर्णित अनुष्ठान–विधियाँ प्रायः एक समान ही है। शुल्कयजुः में जहाँ केवल मन्त्रों का ही निर्देश किया गया है, वहाँ कृष्णयजुः में मन्त्रों के साथ तद्विधायक ब्राह्मण भी संमिश्रित हैं। चरणब्यूह के अनुसार कृष्णयजुर्वेद की 85 शाखायें हैं जिनमें आज केवल 4 शाखायें तथा सत्यसबद्ध पुस्तके उपलब्ध होती है– (1) तैत्तिरीय, (2) मैत्रायिणी, (3) कठ, (4) कपिष्ठिक–कठ शाखा।

तैत्तिरीय संहिता –

तैत्तिरीय संहिता का प्रसारदेश दक्षिण भारत है। कुछ महाराष्ट्र प्रान्त समग्र आन्ध्र–द्रविण देश इसी शाखा का अनुयायी है। समग्र ग्रन्थों–संहिता, ब्राह्मण, सूत्र आदि की उपलब्धि से इसका वैशिष्टय स्वीकार किया जा सकता है, अर्थात् इस शाक्षा ने अपनी संहिता, ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र तथा गुह्रसूत्र को बड़ी तत्रता से अक्षुण्ण बनाये रक्खा हैं तैत्तिरीय संहिता का परिमाण कम नहीं हैं यह काण्ड, प्रापाठक तथा अनुवाकों में विभक्त है। पूरी संहिता में 7 काण्ड, तदर्न्गत 44 प्रपाठक तथा 631 अनुवाक

है। विषय वही शुक्ल–यजर्वुेद में वर्णित विषयों के समान ही पौरोडाश, याजमान, वाजपेय, रासूय आदि नाना यागानुष्ठानों का विशद वर्णन है। आचार्य सायण की यही अपनी शाखा थी। इसलिए तथा यज्ञ के मुख्य स्वरूप के निष्पादक होने के कारण उन्होंने इस संहिता का विद्वत्तापूर्ण भाष्य सर्व–प्रथम निबद्ध किया, परन्तु उनसे प्राचीन भाष्यकार भट्ट भास्कर मिश्र (11वीं शताब्दी) है, जिनका 'ज्ञान–यज्ञ' नामक भाष्य प्रामाथिकता तथा विद्वत्त में किसी प्रकार न्यून नहीं है। अधियज्ञ अर्थ अतिरिक्त प्रामाणिकता तथा विद्वत्ता में किसी प्रकार न्यून नहीं है। अधियज्ञ अर्थ के अतिरिक्त अध्यात्म तथा अधिदैव पक्षों में भी मन्त्रों का अर्थ स्थान–स्थान पर किया गाया है।

मैत्रात्रणी संहिता

कृष्ण यजुर्वेद की अन्तम शाक्षा मैत्रायणी की यह संहिता गद्यपद्यात्मक है, मूल ग्रन्थ काठकसंहिता के समान होने पर भी उसकी स्वरांकन पद्धति ऋग्वेद से मिलती है। ऋग्वेद के समान ही यह अष्टक तथा अध्यायों में विभक्त है। इस प्रकार कापिष्ठल कठसंहिता पर ऋग्वेद का ही सातिशपथ प्रभाव लक्षित होता है। ग्रन्थ अधूरा ही है। इसमें निम्नलिखित अष्टक तथा तदन्तर्गत अध्याय उपलब्ध है–

प्रथम अष्टक–पूर्ण, आठों अध्याय के साथ।

द्वितीय अष्टक– त्रुटित } 9 से लेकर 24 अध्याय तक बिल्कुल त्रुटित।
तृतीय '' – त्रुटित }

चतुर्थ '' –32वें अध्याय को छोड़कर समस्त (25–31 तक) अध्याय उपलब्ध हैं, जिसमें 27 वाँ अध्याय रुद्राध्याय है।

पच्चम '' – आदिम अध्याय (33अ०) को छोड़कर अन्य सातों अध्याय उपलब्ध।

षष्ठ '' – 43वें अध्याय को छोड़कर अन्य अध्याय उपलब्ध। 48 अध्याय पर समाप्ति।

पाठकों को जान रखना चाहिए कि उपलब्ध अध्याय भी समग्र रूप से नहीं मिलते, प्रत्युत वे भी बीच में खण्डित तथा त्रुटित है। अन्य संहिताओं के साथ तुलना के निमित्त यह अधूरा भी। ग्रन्थ बड़ा ही उपादेय तथा उपयोगी है। विषय शैली कठसंहिता के समान ही है।

3.4 यजुर्वेद कालीन धर्म एवं समाज

यजुर्वेद कालीन धर्म

यजुर्वेद कालीन आप एक धर्म प्रधान जाति थे। उनका देवताओं की सत्ता, प्रभाव, तथाव्यापकता में दृढ़ विश्वास था। उनकी कल्पनाओं में यह जगत–पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकश इन तीनों भागों में विभक्त था। प्रत्येक लोक में देवताओं का निवास था। ये अग्नि के उपासक को अग्नि में विभिन्न देवताओं के उद्देश्य से सोमरस की आहुति दिया करते थे। यज्ञ की संस्था उनके धर्म की एक विशिष्ट अंग थी। ये धर्म में बहुदेवतावादी यज्ञ प्रधान धर्म को मानते थे। देवों की आकृति मनुष्य के समान ही थी।

यजुर्वेद कालीन धर्म मुख्य रूप से याज्ञीक धर्म के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि यजुर्वेद मुख्यतः यज्ञ प्रधान वेद माना जाता है। इसके आरम्भ के दोनों अध्यायों में दर्श और पौर्वमास इष्टियों से सम्बद्ध मन्त्रों का वर्णन है तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य के लिये उपयोगी मन्त्रों का विवरण हैं चतुर्थ से लेकर अष्टम अध्याय तक सोमयागों का वर्णन है जिसमें अग्निष्टोम का प्रकृतिन्याय होने के कारण

विस्तृत विवरण है। अग्निष्टोम में सोम की पत्थरों से कुटकर इसका रस चुआते है और दूध मिलाकर उसे प्रातः मध्या" तथा सायंकाल अग्नि में हवन करते है। इनका नाम सवन है जो तीनो समयों के अनुसार भिन्न–भिन्न नामों से विख्यात है। इसके अनन्तर आठ अध्याय–अग्निचयन, 16 अध्यायों में शतरूद्रिय होम, 18वें अध्याय का 'रूद्राध्याय' अतीव उपयोगी एवं प्रख्यात है। 18वें अध्याय में वसोधार, 22–25 तक अश्वमेध यज्ञ है। इन स्वरूपों से स्पष्ट है कि यज्ञादि क्रिया यजुर्वेदिक काल प्रमुख धर्म था।

वध्यरूप से देखने पर यज्ञ तो केवल किसी देवता विशेष के लिये द्रव्य का अग्नि में प्रक्षेप है; परन्तु यह विलक्षण रहस्य से संवलित है। जिस कर्म से शुद्धि–देह शुद्धि, इन्द्रिय, अहंकार शुद्धि और चित्त शुद्धि होती है जिस कर्म का फल स्वार्थ नहीं, पदार्थ होता है, जिस कर्म से नया आवरण नहीं बनता, प्रसुत पहिले का आरवण क्षीण हो जाता है, जो मार्ग जीव को क्रमशः कल्याण के मार्ग में अग्रसर होने में सहायता देता है और अन्त में महाज्ञान् तक प्राप्त कराता है–वही यज्ञ हैं। वहिर्याग के रहस्य को समक्षना अन्तर्याग के रूप को समझने से सिद्ध होता है। अज्ञान को निरस्त कर ज्ञान तथा महाज्ञान की प्राप्ति करना ही यज्ञ का उद्देश्य है। चैतन्य के विकास के पाँच स्तर हैं, जो कोषों के साथ सम्बद्ध है ये कोष पाँच हैं–जो क्रमशः उच्च से उच्चतर चैतन्य की वृद्धि के सूचक हैं। कोषों के नाम है–अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय।

जीव को भगवान् के चरणारविन्द में अपना सर्वस्व समर्पण करना होता है। दुःख तथा सुख; हेय तथा उपादेय; मृत्यु तथा अमृतत्व इन सबका समर्पण अनन्त ब्राह्माण्ड नायक भगवान के चरणों में करने से ही जीवन ही जीव का परम कल्याण सम्पन्न होता है। यज्ञ आत्म–वलिरूप है। उसके द्वारा मलिन अंश का त्याग कर शुद्ध अंश का ग्रहण किया जाता है। अन्ततः विशुद्ध सत्व में आत्मा प्रतिष्ठित होता है। यज्ञ की चरम आहुति या पूर्णहुति ग्रहण करने का की क्षमता न तो किसी लौकिक अग्नि में है, और ना किसी अलौकिक अग्नि में यह तो विशुद्ध अमृत है। एक मात्र वृह्माग्नि में–विशुद्ध चैतन्य रूप में ही उस परम अमृत के धारण करने की क्षमता है।

पारस्परिक भावना ही इस विश्वचक्र के संचरण का मूल तत्व है। देवता तथा मानव–देवता तथा मानव–दोनों को परस्पर से ही यह विश्व चलता है, और इस भावना मूल साधन है–यज्ञ के द्वारा ही मनुष्य–देवताओं का अहार प्रस्तुत करता है जिससे वे पुष्ट होते है, और देवता मानवों के कल्याणार्थ नाना कर्मो का सम्पादन स्वयं करते है। भगवान के सच्चे भक्तों का कभी अमंगल नहीं होता।

वेद में विश्व बन्धुत्व को परिकल्पना एक अनोखी वस्तु है। वेद मानव मात्र के लिए कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। वैदिक प्रार्थनाओं में व्यष्टि के ही लिए नहीं, अपितु समष्टि के लिए मंगल भावना का स्पष्ट तथा विशद् निदर्शन है। वैदिक ऋषि व्यक्ति तथा समाज से ऊपर उठकर समस्त विश्व की सुख समृद्धि एवं मंगल के निमित्त ही प्रार्थना करता है। मन्त्रों का प्रामाण्य इस विषय में अक्षुण्य है–

विश्वानि देव सविर्दूरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव (शु०यजु० 30/3)

हे देव सविता, समस्त पापों को हमसे दूर करो। हमारे लिए जो भद्र वस्तु हो कल्याणकारी पदार्थ हो उसे हमें प्राप्त कराइये।

विश्वशान्ति और विश्वबन्धुतव की उदात्त भावना से ओतप्रोत वैदिक मन्त्रों में प्राणिमात्र में परस्पर सौहाद्, मैत्री तथा साहाय्य की भावना की उपलब्धि नितान्त स्वाभाविक है।

नित्तस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीसे। नित्रस्य चक्षुष समीक्षामहे

इस काल में वर्ण व्यवस्था विद्यमाथ थी–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र। ब्राह्मण कार्य शिक्षा प्राप्त करना तथा शिक्षा देना था। क्षत्रिय का कार्य प्रजा की रक्षा तथा ब्राह्मणों की रक्षा करना था। वैश्य का कार्य व्यापार करना था एवं शुद्ध का कार्य तीनों उच्च वर्णों की सेवा करना था। ये चारों वर्ण कर्म के आधार पर थे परन्तु धीरे–धीरे वह वंशानुगत व्यवस्था हो गयी।

यजुर्वेद कालीन समाज–

वेदकालीन समाज पितृमूलक समाज था। पिता ही प्रत्येक घर का नेता तथा पुरषकर्ता था। पुत्र तथा पुत्री, वधू तथा स्त्री सब लोग उसी की छत्र छाया में अपना सुखद समय बिताते थे। पिता केवल पुत्रों को ही शिक्षा नहीं देता था। प्रत्युत पुत्रियों का भी ललित कला की शिक्षा देकर सुयोग्य गृहिणी बनाता था। उनयन संस्कार के अनन्तर गुरु के पास जाकर वेदाध्ययन की भी प्रथा थी। प्रचिनकाल में स्त्रियों के भी मौजी–बंधन का उल्लेख मिलता है। शिक्षा प्राप्त बालिकाओं में से कुछ तो विवाह कर गृहस्थी के कार्य मे जुट जाती थी, परन्तु कतिपय आजन्य ब्रह्मचारिणी (ब्रह्मवादिनी के नाम से प्रख्यात) बनकर बिद्या तथा अध्यात्म की उपासना में अपनी जीवन–यापन करती थी। समाज का प्रत्येक व्यक्ति पुत्र की उत्पत्ति के लिए देवताओं से प्रार्थना करता था। पुत्र के लिए वैदिक शब्द 'वीर' (= लैटिन वीरूस) है, जो अवन्तार काल में शौर्य–मण्डित भक्ति के अर्थ में आनेलगा।

विवाह प्रथा एवं स्त्री

यह भ्रात धारणा फैली है कि यजुर्वेद के युग में कन्या अपने पति का वरण स्वयं कर लेती थी, उसके माता–पिता का इस कार्य में किसी प्रकार नियन्त्रण या नियमन नहीं था। सत्य इसके ठीक विपरित द्रष्टव्य होता है। केवल क्षत्रि वशोत्पन्ना कन्याओं के लिये स्वयंवर प्रथा थी। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सा होवाच यस्मै माँ पिताऽदात्रैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति। अर्थात् मेरे माता–पिता ने मुझे जिस पति के हवाले किया है मैं उसे जीते ही नहीं छोड़ूँगी। एक पति की अनेक पत्नियाँ होती थी। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार महिषि जो कि क्षत्रिय होने के साथ–साथ पटरानी होती है। इस युग मकें नारी का गृहस्थी मैं का महत्व था दूहिता के रूप में, पत्नी या माता के में वह सर्वथा सम्मानजनक थी। स्त्री सहधर्मिणी थी उसी के में धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान वस्तुतः सम्पन्न होता हैं इसलिये अपत्निक व्यक्ति यज्ञ के अधिकार से वंचित था। अयज्ञो व ध्येष योऽपत्नीकः (तै०ब्रा० 2/2/2/6)। नारी की शिक्षा सुव्यवस्थित रूप में दृष्टिगोचर होती है। समाज के उच्च स्तर पर की कन्याओं में उपनयन संस्कार का प्रचलन था। इस तथ्य की सूचना 'पूरा कल्पे तु नारीणां मौंजी बन्धन मिण्यतें' आदि प्रख्यात स्मृति–वचनों के द्वारा प्राप्त होती है। उपनयन के अनन्तर उन्हें सुव्यवस्थित शिक्षण दिया जाता था। आठ वर्ष से आरम्भ कर लगभग 9 वर्षों तक वे उन सभी विधाओं का शिक्षण प्राप्त करती थीं, जो उन्हें सद्गृहिणी बनाने पर्याप्त सहायक होती थीं। संगीत की शिक्षा भी उन्हीं दी जाती थी, परन्तु अधिकतर उन्हें धार्मिक शिक्षा ही दी जाती थी। यजमान–पत्नी के रूप में वे अग्नयाधान करने वाले अपने पतिदेव के धार्मिक कृत्यों के हाथ बटाती थी। अग्नि के परिचरण के समय वे तत्तत् विशिष्ट मन्त्रों के उच्चारण के संग हवन–कार्य का सम्पादन करती थी। यह तभी सम्भव हो सकता था, जब उन्हें मन्त्रों के अध्ययन का अवसर छात्र–जीवन में मिलता हो। अध्ययन का कार्य उन्हें अपने घर पर ही किसी पुरुष के द्वारा करना पढ़ता था। नियन्त्रण

की प्रवृत्ति इस युग में दृष्टिगोचर होती है, अर्थातृ यज्ञों के जिन भागों में स्त्रियाँ विशेष रूप से कार्य करती थी, उसके नियन्त्रण के कारण वे अंश पुरुषों के द्वारा किये जाने लगे। रूद्रयाग तथा सीतागण जैसे कतिपय भागों का सम्पादन स्त्रियों का ही विशिष्ट अधिकार अब भी माना जाता था, और शिक्षित स्त्रियाँ इन यागों का कृत्य विधिवत् सम्पन्न करती थी।

तत्कालीन जीवन– तत्कालीन आर्यो का समाज कृषीबल समाज था, जो एक निश्चित स्थान पर अपनी बस्तियाँ बनाकर पशु–पालन तथा कृषि कर्म में सतत् निरत रहता था। इनका जीवन अधिकतर ग्राम्य था। नगरिय जीवन की सत्ता भी मिलती है। देश में ग्राम फैले हुए थे कुछ ग्राम के नजदीक होते थे, कुछ दूर, परन्तु आपस में सड़कों के द्वारा जुड़े रहते थे। गाँव में केवल मनुष्य ही नहीं अपितु, गाय, बैल, बकरी तथा भेड़ों के झुण्ड तथा रखवाली के लिये कुत्ते भी रहते थे। कृषीबल समाज होने के कारण आर्यो का मुख्य व्यवसाय कृषि अथवा पशु–पालन था। गायों को दूहने का कार्य गृहपति के पुत्री के जिम्मेदारी जो इसी कारण 'दुहिता' कहलाती थी।

इनका भोजन सीधा–सादा, स्वास्थ्यवर्धक तथा सात्विक होता था, जिसमें दूध और घी की प्रचुरता रहती थी। जौ की रोटी और चावल (धान) का भात। तर्पण के समय तिल के साथ जौ तथा धान का प्रयोग किया जाता था। आटे को दही में मिलाककर 'करम्अ' तथा चावल को दूध मिलाकर 'क्षीरोदन' बनाया जाता था तथा उसे देवताओं को भेंट किया जाता था। दूध में सोमरस मिलाकर पीने की चाल थी। दही का उपयोग भोजन स्वतन्त्र रूप से भोजन किया जाता था। बेर का फल बारा था क्योंकि इसके अनेक प्रकारों का उल्लेख मिलता है। बेर के साधारण शब्द है बदर और कर्कन्धु पर कोमल वदरी फल को 'कुवल' के नाम से पुकारते थे। भोजन को मीठा बनाने के लिए 'मधु' का प्रयोग किया जाता था तथा देवताओं को समर्पित किया जाता था। ये लोग गन्ने से भली–भॉति परिचित थे। सोमरस का रंग–भूरा (वभ्रु), लाल (अरूण, अरूष) बतलाया गया है और इसका गन्ध नितान्त सुरभि। मधुरता की प्रचुरता के लिये इसमें दूध मिलाते थे, जिसे 'गवाशीर' कहते है।

पुर–वैदिक ग्रन्थों में 'पुर' तथा 'पुर' दोनों शब्द मिले रहते हैं, परन्तु दोनों के अर्थ में तनिक पार्थक्य सा प्रतीत होता है। त्रिपुर (तैत्ति०सं० 6/23 शत० 6/3/3/24 ऐत० 2/99) तथा महापुर (तै० सं० 6/2/3/9412 से०1/23/2) शब्द निःसन्देह किसी बड़े निवास स्थान के लिए प्रयुक्त किये गये है। 'त्रिपुर' का संकेत उस शहर से जान पड़ता है जिसमें किलाबन्दी की तीन कतारें खेड़ी की गई थी 'महापुर' तो निश्चित ही किसी तृहत आकार वाले किलाबन्दी किये गये नगर को बतलाता है। ये शब्द उस काल में प्रयुक्त किये गये हैं जब आर्य लोग बड़ी जातियों का प्रधान राजाधानियों से परिचित हो चले थे। इस युग में वे काम्पिल (पाचालों की राजधानी) आसन्दीवन्त (कुरुराजधानी) तथा कौशाम्बी नगरियों से भली–भॉति परिचित हो गये थे। एकादश द्वारा पुर तथा 'नव द्वारं पुरं का औप निपद उल्लेख इसी सिद्धान्त को पुष्ट कर रहा है। इन शब्दों में शरीर की उपमा नौ द्वारवाले या ग्यारह द्वारवाले पुर से दी गई है, परन्तु जब तक आर्यों ने इतने दरवाजा वाले बड़े नगरों को न देखा होगा, तब तक ऐसी उपमा के प्रयोग करके का अवसर व आया होगा।

वस्त्र एवं परिधान :–

इस समय साधारण परिधान का विधान नहीं था। परन्तु वस्त्र और परिधान ऊनी सूती और रेशमी हुआ करते थे। अजिन तथा कुश के बने वस्त्रों के बने वस्त्रों के पहनने

की चाल यज्ञ के पवित्र अवसर पर ही जरूर परन्तु साधारण परिधान नहीं था। दीक्षित पुरुष के शिखा के अवसर पर मृगचर्म पहनने का विधान था। वस्त्र के ऊपर शरीर के ढक जाने पर भी–कृष्णाजिन पहनने के विधान से यही सूचित है कि प्राचीनता तथा पवित्रता का ख्याल कर शुभ अवसरों पर इस पवित्र वस्त्र का व्यवहार इस समाज को उसी प्रकार अभीष्ट था, जिस प्रकार सोमयाग के अवसर पर दीक्षित यजमान को बाँस के बने मण्डप में रहने की तथा दीक्षिता यजमान–पत्नी को अधोवस्त्र के ऊपर कुश के बने वस्त्र पहनने की विधि ब्राह्मणों में ही नई है। अधिवास के वर्णन प्रतीत होता है कि वह लम्बा–ठीला चोला था, जिसे राजा लोग धोती तथा कुर्ते के ऊपर पहना करते है। अधिकतर–सम्भव है कि यह शरीर के ऊपरी भाग ढकने वाला दुपट्टा था।

यातयात के साधन

यातायात के प्रधान साधन रथ था। वैदिक युग में रथ संचरण क्रीड़ा तथा युद्ध के लिए नियुक्त किये जाते थे। राज्य की सेना में रथियों का प्रधान स्थान था। उत्सवों में रथों की दौड़ा हुआ करती थी। उसमें सम्मिलित होने वाले रथ एक चक्राकार रंग स्थल में तेजी से दौड़ाये जाते थे। उस युग में रथ की निर्माण विधि का भी ज्ञान हमें प्राप्त होता है। रथ लड़कों का वक्ता था। जिसमें उसका अक्ष (दोनो पहियों को जोड़ने वालो डंडा) 'आरटू' नामक लकड़ी का बनता था। अक्ष तथा युग (जुये) को जोड़ने वाला डंडा भी लकड़ी का बनता था। और ईषा दण्ड कहलाता था। ईषा को जुये में किये गये छेद (तद्र्मन) में बैठायाय जाता था। और उसे योक्तक से बांध दिया जाता था। ईषा का जो भाग जूये से आगे की ओर निकला रहता था 'प्रउग' कहलाता था। घोड़े या बैल जुआ कन्धे पर रखने के समय इधर–उधर भाग न जॉय इसलिए जूए के दोनो ओर छोटे–छोटे डंडे पहिना दिया जाते थे। चक्र की बाहरी गोलाई को (प्रार्थी) तथा भीतरी भाग को 'पति' और दोनों को मिलाकर 'नेवि' कहते थे। तीलियों को 'अर या अरा' कहते थे। अक्ष के दोनो ओर उन्हें मजबूत बनाने ओर दौड़ते समय खिसकने न देने के लिए लगाई गई छोटी लकड़ियों आणि कहलाती थीं। अक्ष के ऊपर रथ का मुख्य भाग होता था। जो कोश या 'बन्धुर' कहा जाता था। कोश के भीतरी भाग 'नीड़' तथा अलग–बगल के हिस्से को 'पक्ष' कहते थे। रथ में योद्धा के बैठने का स्थान 'गर्ता' कभी–कभी बन्धुरा भी कहा जाता या वह सारथि के दाहिने पार्श्व में बैठता था। रथ के ऊपरी भाग को 'रथशीर्ष' कहते थे। रथ के वेग को घटाने के लिए या आवश्यकता पड़ने पर रथ को सहारा देने के लिए भी ईषा दण्ड से एक भारी सी लकड़ी नीचे की ओर लटकाई जाती थी जिसे कस्तंभी या अपालम्ब कहते थे। बहुधा रथ में या चार घोड़े जोते थे। कभी–कभी तीन घोड़े भी जाते थे। इस तीसरे घोड़े का नाम 'प्रष्टि' था। जैसे कभी–कभी एक घोड़े से भी काम चलाना पड़ता था। सारथी लगाम तथा चाबुक (प्रतोद) से रथ का संचालन करता था। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि रथों का वर्गीकरण रभांग के किसी वैशिष्ट के आधार पर किया जाता था। वाहकों के आधार पर वृष रथ, षडश्व पंचवाही आदि। रथभागों के आधार पर त्रिबन्धुर सप्त, हिरण्यचक्र हिरण्य प्रउग आदि नाम होते थे।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. यजुर्वेद का प्रमुख भेद है–
   (क) ब्रह्म (ख) तैत्तिरीय
   (ग) मैत्रायिणी (ग) कठ
2. काण्व शाक्षा के अंतर्गत आता है–

(क) शुक्लयजुर्वेद (ख) ऋग्वेद
(ग) कृष्णयजुर्वेद (ग) सामवेद

3. मैत्रायणी शाक्षा मूल रूप से है–
(क) गद्यात्मक (ख) गद्यपद्यात्मक
(ग) पद्यात्मक (ग) इनमें से कोई नहीं

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
(क) शुक्ल यजुर्वेद में.................................अनुष्ठानों के लिए आवश्यक केवल मन्त्रों का ही संकलन है।
(ख) शुक्ल यजुर्वेद की मन्त्र संहिता..के नाम से प्रसिद्ध है।
(ग) इठिमिका...संहिता का खण्ड है।

5. निचे कुछ वाक्य दिए गये जिनमें सही के सामने सही (√) तथा गलत वाक्य सामने गलत (×) का निशान लगाये।
(क) कठ संहिता शुक्ल वेद के अन्तर्गत आता है ( )
(ख) मैत्रायिणी कृष्ण यजुर्वेद की शाखा है ( )
(ग) आदित्य सम्प्रदाय शुक्ल यजुर्वेद को कहा गया है ( )

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप यजुर्वेद की मुख्य विषयों का जाान गये होगे जिसमें कि यजुर्वेद भेद उसकी शाखाएं, उसमें वर्णित विषय तथा यजुर्वेदिय धर्म एवं समाज पर प्रकाश डाला गया है। यजुर्वेद के दोनों भेद ब्रह्म तथा आदित्य को ही क्रमशः कृष्ण तथा शुक्ल के रूप जाने गये है। तथा कृष्ण और शुक्ल में पृथकत्व का कारण भी इस इकाई के माध्यम से आपकों स्पष्टतः द्रष्टव्य होगा। जिससे आप यजुर्वेदीय विषय–वस्तु को अध्ययन अत्यन्त सरलता के साथ कर सके।

वेदज्ञ की प्रशंसा में मनु की उक्ति बड़ी मार्मिक है–वेदशास्त्र के तत्व को जानने वाला व्यक्ति जिस किसी आश्रम में निवास करता हुआ कार्य का सम्पादन करता है वही इसी लोक में रहते हुए भी ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। जब भारतीय धर्म की जानकारी के लिए वेदों को इतना महत्व प्राप्त है, तब इनका अनुशीलन प्रत्येक भारतीय का आवश्यक कर्तव्य होना चाहिए।

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1–(क) 2–(क) 3–(ख)
4– (क) दर्शपौर्णमासादि (ख) वाजषनेयी शाखा
(ग) कठ

5–(क) (×) (ख) (√) (ग) (√)

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आचार्य बलदेव उपाध्याय–वैदिक साहित्य और संस्कृत
आचार्य बलदेव उपाध्याय–भागवत सम्प्रदाय
मूलयजुर्वेद संहिता –महर्षिदेवरात

3.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें

संस्कृत साहित्य का इतिहास –उमाशंकर शर्मा 'श्रर्षि'

सस्कृत वाड्मय का वृहद् इतिहास–पद्मश्री आचार्य बलदेव उपाध्याय

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

- यजुर्वेद के वर्ण्य विषय प्रकाश डालते हुए प्रमुख सम्प्रदायों की विवेचना कीजिए।
- यजुर्वेद की प्रमुख शाखाओं का परिचय प्रस्तुत कीजिए।

****